इकाई 1 आधुनिक राज्य और राजनीति

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

आपने यूरोपीय इतिहास के इस पाठ्यक्रम की पाठ्यक्रम प्रस्तावना तथा खंड प्रस्तावना को तो पढ़ ही लिया होगा। हम समझते हैं कि आप इस पाठ्यक्रम की व्यापक रूपरेखा तथा बुनियादी महत्व को समझ गए होंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्न विषयों को समझाने की स्थिति में होंगे :

- आधुनिक राज्य की प्रकृति तथा नौकरशाही की भूमिका;
- राष्ट्रवाद तथा राष्ट्र राज्य का विकास; और
- आधुनिक राज्य में न्यायपालिका तथा राजनीतिक दलों की भूमिका तथा लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया।

1.1 प्रस्तावना

आधुनिक यूरोपीय राज्यों में सत्ता का इस्तेमाल पहले के राज्यों में विद्यमान सत्ता के किसी भी स्वरूप से भिन्न था। इसकी विशेषता थी : (क) आधुनिक राज्य की पूर्ण सत्ता; और (ख) ये राज्य जिस जनता पर अपनी सत्ता का इस्तेमाल करते थे उसकी जबरदस्त लामबंदी।

यह आवश्यक नहीं कि पूर्ण सत्ता (निरंकुश शक्ति) का अर्थ केवल तानाशाही या अत्याचारी शासन से लगाया जाए, क्योंकि इसमें किसी न किसी रूप में जनता की सहमति जरूरी होती है। फिर भी, इसका यह अर्थ तो है ही कि (क) आधुनिक यूरोपीय राज्य ने असीम शक्तियां प्राप्त कर लीं और ये पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ती ही चली गईं; और (ख) ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जहां राज्य का प्रवेश निषेध हो। दूसरे शब्दों में, सत्ता तथा क्रियाकलापों का क्षेत्र दोनों ही असीम हैं और इनका विस्तार भी हो रहा है।

यह स्थिति यूरोपीय तथा यूरोप से बाहर के भी पूर्व-आधुनिक राज्यों के बिल्कुल उलट है। भारी दिखावों के बावजूद, इन राज्यों की क्रियात्मक क्षमता सीमित थी। जब ये राज्य क्रियाकलाप या कार्रवाई करते भी थे तो उसमें दिखावा ज्यादा होता था और उनका उद्धेश्य जनता को प्रभावित और आतंकित करना होता था; लेकिन इस प्रकार के प्रदर्शन और नाटक नियंत्रण की उस दैनिक प्रक्रिया के स्थानापन्न थे, जो आधुनिक राज्य की तुलना में अत्यंत सीमित थी। इसके अतिरिक्त, जिन क्षेत्रों में राज्य कार्रवाई करते थे, वे बहुत कम थे। इन राज्यों की कार्यवाई मुख्य रूप से सैनिक और वित्तीय, अथवा युद्ध और कर लगाने के क्षेत्रों तक सीमित थी; दूसरे अधिकांश मामलों में अपेक्षाकृत कम दखल दिया जाता था और उनका नियंत्रण दूर से ही किया जाता था।

आधुनिक यूरोपीय राज्य इस ढंग से कार्य करने में समर्थ था तो इसके अनेक कारण थे। इनमें से प्रमुख थे :

- वैध बल प्रयोग पर एकाधिकार के माध्यम से प्रत्यक्ष शासन;

- राज्य का अपनी जनता पर सांस्कृतिक एकरूपता थोपने के माध्यम से राष्ट्रवाद; और
- जनता की इच्छा को मूर्त रूप देने के राज्य के दावे के माध्यम से इसकी लोकतांत्रिकता को वैध करना।

इस इकाई में आधुनिक राज्य तथा राजनीति की मुख्य विशेषताओं से आपका परिचय कराया जाएगा।

1.2 प्रत्यक्ष शासन एवं नौकरशाही

कालक्रम के अनुसार आधुनिक यूरोपीय राज्य का पहला और शायद सबसे अधिक महत्वपूर्ण आधार तो प्रत्यक्ष शासन था। पंद्रहवीं शताब्दी के बाद से यूरोपीय राजाओं ने अपनी प्रजाओं पर प्रत्यक्ष शासन को अधिकाधिक लगाया और सारी सत्ता को अपने हाथों में केंद्रित कर लिया। इस उद्धेश्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने अपने सामंतों तथा रियासतों के हाथों से सत्ता छीन कर ऐसे शाही अधिकारियों अथवा अमीरों को नियुक्त कर दिया जो सीधे-सीधे राजा के प्रति उत्तरदायी थे अथवा केवल उसी पर निर्भर थे। यहीं से आधुनिक नौकरशाही की शुरुआत हुई। पंद्रहवीं से ले कर अठाहरवीं, इन तीन शताब्दियों का इतिहास राज्य अथवा किसी राजा और सामंतों अथवा इलाकाई सरदारों के बीच इस प्रकार के कटु संघर्ष से भरा पड़ा है, और इन सभी का अंत शाही निरंकुशता की घटनाओं में हुआ। इस प्रकार के सर्वाधिक उल्लेखनीय राज्य निर्माता थे रूस के इवान चतुर्थ (भयंकर) तथा पीटर प्रथम (महान), फ्रेडरिक विलियम तथा फ्रेडरिक द्वितीय (प्रशा के), फ्रांस के कार्डिनल रिशलू तथा लुई चौदहवां, और इंगलैंड के हेनरी अष्टम तथा टॉमस क्रॉमवेल। इस तरह, केवल राजा सेनाएं रख सकता तथा युद्ध कर सकता था, जनता पर कर लगा सकता था, झगड़ों का निपटारा कर सकता था, अपराधियों को दंड दे सकता था, तथा विशेषकर अपनी प्रजा के किसी सदस्य की जान ले सकता था, और यह सब वह अपनी नई राजसी नौकरशाही के माध्यम से करता था।

नौकरशाही तो बड़े-छोटे के क्रम में अधिकारियों का एक प्रशासनिक तंत्र होता है जिसका आदर्श ये विशेषताएं होती हैं : ये अधिकारी वेतनभोगी पेशेवर होते हैं और ये जो भी निर्णय लेते अथवा लागू करते हैं उसमें इनका कोई व्यक्तिगत हित नहीं होता, ये अधिकारी अपने से वरिष्ठ अधिकारियों के आदेश का पालन करते तथा अपने से नीचे स्तर के अधिकारियों को आदेश देते हैं, और ये निचले स्तर के अधिकारी भी उसी प्रकार इन आदेशों को लागू करते हैं, ये अधिकारी अपनी व्यक्तिगत सनक अथवा पसंद के अनुसार नहीं, अपितु कानून के बनाए नियमों के अनुसार कार्य करते हैं, उनका चुनाव उनके व्यक्तिगत, परिवारिक अथवा वर्गीय संबंधों के आधार पर नहीं, अपितु क्षेत्र विशेष में उनकी विशेष योग्यता के आधार पर किया जाता हैं, उन्हें मशीन के पुरजों की तरह ही बदला जा सकता है, और उनकी जगह आने वाला नया अधिकारी भी उसी की तरह काम करता है और केवल व्यक्ति पर कुछ निर्भर नहीं करता। नौकरशाही का यह आदर्श रूप है, और कार्य करने के इस विशेष ढंग को तार्किक - वैधानिक (रैशनल-लीगल) कहा गया है। मैक्स वेबर ने आधिकारिक तौर पर इस ढंग को इसी रूप में वर्णित किया है। लेकिन जब व्यवहार की बात आती है तो इस आदर्श रूप से वह हमेशा अत्यंत भिन्न होता है, जैसाकि होना ही चाहिए, किंतु इसके बहाने हमें आधुनिक प्रशासनिक ढांचों की कार्यप्रणाली के भीतर झांकने का अवसर मिल जाता है, चाहे यह प्रशासनिक कार्य प्रणाली राज्य की हो, राजनीतिक दल की हो, किसी व्यापारिक निगम की हो, ईसाई धर्म संस्था (चर्च) की तरह की किसी धार्मिक सोपानिकी (हाइराकी) की हो, अथवा क्लब जैसे किसी सामान्य से संगठन की हो।

इस तरह की नौकरशाहियों से क्योंकि हमारा पाला आए दिन पड़ता ही रहता है और क्योंकि हम सरकार से इसी आदर्श के अनुसार कार्य करने की अपेक्षा रखते हैं, इसलिए हम बिल्कुल भी यह महसूस नहीं कर पाते कि यह अन्य प्रकार के शासन से कितनी भिन्न है। सच तो यह है कि जब हमारा पाला दूसरी किस्म के शासन से पड़ता है तो हम स्वाभाविक तौर पर उन्हें मनमाना और भ्रष्ट बताते हैं। उदाहरण के लिए, यदि अधिकारियों की नियुक्ति उनके पारिवारिक संबंधों के आधार पर या उनसे रिश्वत ले कर की जाए, यदि वे इस आधार पर निर्णय करें कि व्यक्तिगत तौर उन्हें यह जंचता है अथवा उनकी मौज थी सो उन्होंने कर दिया, यदि उन्हें आदेशों के बिना अथवा आदेशों के विपरीत अथवा कानून से बाहर जा कर कार्रवाई करनी हो, यदि उनकी नियुक्ति उस पद के लिए आवश्यक विशेष योग्यता के बिना कर दी जाए अथवा सब कुछ किसी एक व्यक्ति पर यह मान कर छोड़ दिया जाए कि उसका कोई विकल्प नहीं, तो ऐसी स्थिति में इस प्रकार के तंत्र को हम अतार्किक, भ्रष्ट

तथा पुरातन कह कर खारिज कर देते हैं। किंतु, आधुनिक समय से पूर्व यही सब बिल्कुल सामान्य हुआ करता था और केवल अब यह अवांछनीय दिखाई देता है। हमने इस पठित आदर्श को आत्मसात कर लिया है और समस्त प्रशासनों को हम इसी पैमाने से मापते हैं। हमें यह मान भी नहीं रहता कि यह पैमाना अभी दो सौ से भी कम वर्षों पूर्व यूरोप में लागू किया गया था और उसके बाद से पूरी दुनिया में इसे मानदंड के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। इस अर्थ में जो कुछ भी "आधुनिक" नहीं है, उसे हम स्वाभाविक तौर पर "पारंपरिक" कह देते हैं अथवा उसके लिए किसी निंदासूचक शब्द का प्रयोग करते हैं।

ऐसे "तार्किक-वैधानिक" रूप में ही नौकरशाही, प्रभावी होने के अर्थ में आधुनिक राज्य को इतनी अधिक शक्तिशाली बना देती है। नौकरशाही एक ऐसा साधन है जो किसी भी अन्य साधन की अपेक्षा कहीं अधिक विश्वसनीय तथा अनुकूल प्रतिक्रिया देने वाला है और किसी भी क्षेत्र में प्रवेश कर सकता है। अवैयक्तिता, विशेषज्ञता, नियमों के अनुसार कार्रवाई, अनम्य सोपानिकी और आसान स्थानापन्नता जैसे कुछ गुणों के कारण नौकरशाही के लिए सटीक तथा पूर्वानुमानित परिणामों वाले निर्णय करना संभव होता है। जो शासक ऐसे मातहतों पर निर्भर करते हैं जिनका अपना व्यक्तिगत स्वार्थ होता है, जो आदेशों का पालन नहीं करते, जिनके पास विशेष योग्यता नहीं होती, ऐसे शासक प्रभावी ढंग से कार्य नहीं कर सकते।

यही कारण है कि आधुनिक समय की तुलना में पूर्व-आधुनिक काल के शासकों के कार्य अत्यधिक दिखावटी तथा नाटकीय, परंतु अपेक्षाकृत कहीं कम प्रभावी होते थे। पूर्व-आधुनिक काल में सत्ता का प्रदर्शन तो व्यक्तिगत धन-दौलत के दिखावे के रूप में सामने आता था। जैसे, राजाओं का तड़क-भड़क वाला पहनावा तथा रहन-सहन, दरबारी नियम-कानून, ताजपोशी जैसे कुछ विशेष अवसरों पर राजाओं की ओर से खुल कर दान दक्षिणा देना, अपराधियों को मनमाना क्षमादान, और राजनीतिक विरोधियों के साथ असाधारण हिंसा का व्यवहार आदि। लेकिन ये प्रदर्शन किसी निश्चित अवधि में ही जनता को प्रभावित करने के लिए होते थे और इनका प्रभाव सीमित होने के कारण इन्हें नियमित रूप से दोहराना पड़ता था। आधुनिक नौकरशाही ने ऐसे अधिकांश नियमित प्रदर्शनों को तिलाजलि देते हुए जनता को प्रभावित करने के इरादे से उन्हें महान राष्ट्रीय पर्वों के लिए सुरक्षित रखा है। वैसे, दिन प्रतिदिन के शासन तथा नियंत्रण के लिए आधुनिक नौकरशाही को इस प्रकार के प्रदर्शनों की जरूरत नहीं पड़ती क्योंकि अब उसमें समस्याओं के पूर्वानुमान की क्षमता है और वह उनमें से अनेक मसलों को उग्र रूप धारण करने से पहले ही हल कर सकती है, अत्यंत सटीक ढंग से किसी अपराधी अथवा राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी को निशाना बना सकती है और कार्रवाई को सुनिश्चित कर सकती है। इन अर्थों में, आधुनिक राज्य किसी पुराने ढर्रे के निरंकुश शासन अथवा तानाशाही की अपेक्षा कहीं अधिक निरंकुश है, हालांकि यह लोकतंत्र के साथ साथ चलता है और लोकतांत्रिक सिद्धांतों पर आधारित रहता है। इस विलक्षण स्थिति की व्याख्या आवश्यक हो जाती है।

सत्ता की इस विशद अभिव्यक्ति के परिणामस्वरूप, ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जिसमें आधुनिक राज्य कोई क्रिया कलाप न करता हो। पहले यह स्थिति थी कि राज्य धनी और शक्तिशाली लोगों पर कार्यकलाप करते थे और शेष जनता पर कर लगाते थे। इसके अतिरिक्त वे कुछ नहीं करते थे लेकिन आधुनिक राज्य समस्याओं का पूर्वानुमान करने की कोशिश में लगा रहता है, राजद्रोह की टोह लगाता है और जनता क्या सोच रही है इस बात का आकलन करता रहता है। आधुनिक राज्य अपने नागरिकों की जिंदगी के सभी पहलुओं के बारे में खुफिया जानकारी एकत्र करने के तंत्र स्थापित करता है, जिससे कि वह किसी भी समस्या का पूर्वानुमान कर सके या यह तय कर सके कि किन्हीं कल्पित स्थितियों में किस प्रकार अच्छी से अच्छी कार्रवाई की जा सकती है। इसी प्रकार, इन राज्यों ने सभी प्रकार के झगड़ों में मध्यस्थता करनी भी शुरू कर दी, चाहें वे औद्योगिक, सामाजिक अथवा व्यावसायिक विवाद हों अथवा स्थानीय या पारिवारिक और उन्होंने जिंदगी के इन सभी पहलुओं से संबंधित नियम-विनियम भी जारी करने शुरू कर दिए। इन राज्यों ने गरीबों, बूढ़ों, बच्चों, यहां तक कि अजन्मे शिशुओं तक की हालत तथा शिक्षा, कल्याण, स्वास्थ्य की जिम्मेदारी भी अपने ऊपर ले ली। इन राज्यों ने जिंदगी के छोटे से छोटे पहलुओं को इन हजारों विभिन्न तरीकों से नियंत्रित करना शुरू कर दिया। जिसे आज हम बिल्कुल सामान्य और आवश्यक भी मानते हैं।

इसके अतिरिक्त, हिंसा तथा दमन के मामले में आधुनिक राज्य की सामर्थ्य इतिहास के किसी भी मशहूर से मशहूर अत्याचारी की सामर्थ्य से हजारों गुना अधिक है। इसका कारण केवल हिंसा पर इसका एकाधिकार नहीं है, अपितु

आधुनिक शस्त्रास्त्र व्यवस्था का तकनीकी विकास और सैनिक तंत्रों का गठन बेहतर है। पूर्व-आधुनिक काल में, कोई भी बड़ा सामंत शाही सेना को चुनौती दे सकने वाली सेना रख सकता था, किंतु आधुनिक सेनाएं रखने का बूता तो केवल राज्य का है और कोई अमीर से अमीर धनपति भी इसके सपने नहीं देख सकता। पहला अंतर तो संख्या का ही है। फ्रांसीसी क्रांति ने यह दिखा दिया था कि आधुनिक सेना तथा संपूर्ण युद्ध का क्या अर्थ हो सकता है, जब शारीरिक रूप से समर्थ सभी नागरिकों को सेना में भरती हो जाने को कहा गया था। यह इतिहास की पहली पूर्ण स्तर की भरती थी और अपने आप में असाधारण रूप से नई चीज थी। सामंती सरदार तो मात्र कुछ हज़ार सैनिकों की फौज रख पाते थे, किंतु आधुनिक राज्य अब लाखों सैनिकों की फौज रखने में समर्थ था और बीसवीं शताब्दी में सैनिकों की संख्या लाखों से भी ऊपर जा पहुँची। सामंती सरदार तो किसी खास अभियान या युद्ध के लिए सेना बनाते थे और मकसद पूरा हो जाने पर उसे तोड़ देते थे, क्योंकि ऐसी सेनाओं में शामिल होने वाले मुख्य रूप से किसान होते थे जिन्हें अपनी रोजी रोटी कमाने के लिए लौट कर जाना होता था। आधुनिक राज्य ने एक स्थायी सेना पालने की परंपरा शुरू की। इतनी बड़ी सेना को स्थायी रूप से रखना केवल राज्य के लिए संभव था, किसी व्यक्ति अथवा स्वतंत्र समूह के लिए नहीं, भले ही वे कितने भी अमीर हों।

इसी प्रकार शस्त्र प्रौद्योगिकी ने भी राज्य का ही पलड़ा भारी किया। सामंती सरदार घुड़सवार और पैदल सेना तो तैयार कर सकते थे, किंतु तोपखाने का खर्च केवल राज्य ही उठा सकता था। यह बात पंद्रहवीं शताब्दी में ही स्पष्ट हो चुकी थी। लेकिन हाथ में पकड़ कर चलाई जा सकने वाली बंदूकों में जो नए-नए प्रयोग हुए उनसे यह एक सटीक हथियार तो बना ही, अधिक महंगा भी हो गया और इसका लाभ भी राज्य को ही मिला। समुद्री लड़ाई में इस प्रकार की प्रौद्योगिकी का प्रभाव तब देखने को मिला जब अठारहवीं शताब्दी के आते-आते समुद्री डाकुओं का लगभग सफाया ही हो गया। बीसवीं शताब्दी में इन आग्नेयास्त्रों में दो और भंयकर नई वस्तुएं आई जिनके परिणामस्वरूप टैंकों और हवाई हमलों का पर्दापण हुआ और इन पर शुरू से ही राज्य का एकाधिकार रहा। टैंकों और हवाई बमबारी की मिली-जुली विध्वंसक शक्ति राज्य को चुनौती देने वाली किसी भी असैनिक आबादी को काबू में रखने में समर्थ थी। इसलिए, जैसा कि वीरगाथा काल के साहित्य अथवा पूर्व-आधुनिक काल में होता था, राज्य का विरोध भी सीधे-सीधे टकराव का रूप नहीं ले सकता था, अपितु यह जनता की राजनीतिक और सामाजिक लामबंदी के रूप में प्रकट होता था। इनमें से कुछ तो हथियारबंद संघर्ष के रूप में सामने आता था, किंतु वह भी छापामार युद्ध अथवा विद्रोह के रूप में, क्योंकि राज्य से सीधी हथियारबंद लड़ाई में टकराना संभव नहीं था। इसी कारण, बीसवीं शताब्दी में ऐसी क्रांतिकारी लामबंदियां तथा बगावतें अधिक आम हो गई हैं। यदि किसी देश के भीतर सीधी हथियारबंद लड़ाइयां होती हैं तो इसका कारण यह है कि राज्य स्वयं खंडित हो गया होता है और एक ही भूभाग में दो या दो से अधिक संभावी राज्य आपस में टकरा रहे होते हैं। इसके उदाहरण हैं : चालीस के दशक के चीनी क्रांतिकारी संघर्ष, 1918-1921 का रूसी गृह युद्ध अथवा 1861-1864 का अमरीकी गृह युद्ध। इसलिए हिंसा पर राज्य का एकाधिकार वास्तविक भी है और घोषित भी।

1.3 राष्ट्रवाद एवं राष्ट्र राज्य

संसाधनों के इस विस्मयकारी संचयन के साथ, आधुनिक यूरोपीय राज्य ने फिर अपने नागरिकों पर एकरूपता थोपी, जिसके फलस्वरूप 'राष्ट्र' और 'राष्ट्रवाद' का जन्म हुआ। यदि समस्त नागरिक एक ही संस्कृति की उपज हों तो उन पर कार्रवाई करने, उनकी ओर से होने वाली प्रतिक्रिया का पूर्वानुमान करने, प्राथमिकताओं को संतुष्ट करने तथा वास्तव में समान विकल्पों की रचना करने की क्षमता तो बढ़ ही जानी थी। दूसरी ओर, खंडित जनता का अर्थ होता था एक खंडित राज्य अथवा अनेक अलग-अलग सत्ता केंद्र। सामंतवाद में एक अकेले केंद्र की इच्छा थोपने वाले निरंकुश शासनवाद ने इस स्थिति पर काबू पाया। इस तरह एक अकेले राज्य का अर्थ होता था एक अकेली प्रजाति या सम्प्रदाय और आधुनिक बनते राज्य ने जानबूझ कर इस प्रकार के अकेले राज्य के निर्माण का बीड़ा उठाया। यह काम आम लोगों ने अथवा जनता ने किया, जिन्हें अब नागरिक कहा जाता था। इन नागरिकों से अपेक्षा की गई कि वे उन्हीं सिद्धांतों का पालन करेंगे जिनसे उनका समाज शासित होता है। इनमें से सबसे अधिक प्रसिद्ध तथा विशिष्ट सिद्धांत था कानून के समक्ष सबकी समानता का सिद्धांत; जीवन के अन्य क्षेत्रों में इसके समकक्ष सिद्धांत थे कि ज्ञान सबके लिए समान रूप से उपलब्ध हो, कि एक व्यक्ति का श्रम मूल्य में दूसरे व्यक्ति के श्रम के समान है कि एक व्यक्ति का वोट दूसरे व्यक्ति के वोट के समान हों, कि प्रत्येक वयस्क को वोट देने का अधिकार हो और यह कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए शिक्षा तथा व्यवसाय का समान अवसर हो।

एकरूपीकरण अथवा इस प्रकार की एकरूपताएं बनाने का सर्वाधिक शक्तिशाली साधन शायद शिक्षा रही। अपने पूर्ववर्ती राज्यों के विपरीत, आधुनिक यूरोपीय राज्य एक मन से शिक्षा के क्षेत्र में सक्रिय रहा। इसने प्राथमिक और फिर माध्यमिक शिक्षा को भी अधिकाधिक सर्वव्यापक और अनिवार्य बना दिया, इस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था के माध्यम से आधुनिक यूरोपीय राज्य ने समान मूल्यों तथा एक भाषा को सुनिश्चित किया। यह एक भाषा स्कूलों में पढ़ाई जाने वाली भाषा थी, जबकि उनके घर की अथवा इलाके की भाषा उससे अलग हो सकती थी। इस प्रकार, आधुनिक यूरोपीय राज्य ने एक भाषा तथा एक संस्कृति वाली ऐसी एक कौम तैयार की कि प्रत्येक नागरिक अन्य किसी भी नागरिक की नकल था और सब के सब एक ही सांस्कृतिक कारखाने के समान उत्पाद थे। इस प्रकार एक अकेले सत्ता केंद्र से शासित होने वाले भूभाग पर एक ही संस्कृति का प्रसार हो गया और इसी को हम राष्ट्र राज्य के रूप में जानते हैं। एक विशिष्ट भूभाग में इस प्रकार की समान संस्कृति के प्रति अपनत्व के बोध को ही हम राष्ट्रवाद के रूप में जानते हैं। राष्ट्रवाद की रचना आधुनिक काल में उन राज्यों ने की जिन्होंने इस प्रकार के राष्ट्रों का निर्माण किया।

यह रचना कितनी ताजा है और इसमें कितनी कठिनाई आई है, इसे यूरोप के सर्वाधिक मशहूर राष्ट्र राज्यों के उदाहरण में देखा जा सकता है। इस प्रकार हम एक ढर्रे में ब्रिटिश कौम और ब्रिटिश राष्ट्र की बात करते हैं और इस बात को बिल्कुल अनदेखा कर जाते हैं कि इसमें कम से कम अंग्रेज, वेल्श और स्कॉट लोग तो आते ही हैं। इनके भीतर विशिष्ट अस्मिता अथवा पहचान वाले क्षेत्र भी हैं। जैसे इंग्लैंड में कॉर्नवॉल और स्कॉटलैंड में हाइलैंड्स। अठारहवीं शताब्दी में जाकर ही अंग्रेजी ग्रेट ब्रिटेन के इन सभी देशों की भाषा बनी। इसी प्रकार, एक और विशिष्ट तथा सफल राष्ट्र राज्य फ्रांस में भी अनेक अलग अस्मिता वाले क्षेत्र हैं। जिनकी आज भी अपनी भाषाएं हैं। इनमें से सर्वाधिक विख्यात हैं उत्तर-पश्चिम का ब्रिटनी और दक्षिण का गैसकनी। 1789 में फ्रांस की केवल 12.13% जनता फ्रांसीसी बोलती थी। इस तरह फ्रांस राष्ट्र का निर्माण वास्तव में उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान ऊपर वर्णित प्रक्रिया से हुआ। इसी प्रकार, 1860 में एकीकरण के समय इटली की केवल 2.5% के आसपास जनता इतालवी भाषा बोलती थी, अन्य लोग विभिन्न क्षेत्रीय भाषाएं बोलते थे, जिनमें से कुछ तो आज भी प्रचलित हैं। फिर, नए इतालवी राज्य को समूची जनता पर इतालवी भाषा थोपनी पड़ी थी जिससे उसे इतालवी राष्ट्र के निर्माण में मदद मिली थी। ऐसी ही प्रक्रियाएं यूरोप के सभी राष्ट्रों तथा राज्यों में चली और राष्ट्रवाद तथा राष्ट्र निर्माण उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान देश-देश की बातें हो गई।

ऐसा कोई आधुनिक राज्य नहीं था जिसने अपने ही राष्ट्रवाद को प्रायोजित न किया हो और रूसी तथा आस्ट्रो हंगरी राज्यों की घातक समस्या यह रही कि वे अपने आप में बहुराष्ट्रीय साम्राज्यों पर शासन कर रहे थे और इस भय से राष्ट्रवाद को बढ़ावा नहीं दे पाए कि कहीं साम्राज्य ही न टूट जाए। वे अपने-अपने यहां क्रमश: रूसी अथवा जर्मन राष्ट्रवाद के चलते जीवित रहने की आशा कर सकते थे और अपने-अपने साम्राज्यों में अन्य संस्कृतियों को उसी प्रकार नष्ट कर सकते थे जैसे ब्रिटिश राष्ट्रवाद ने हाइलैंड स्कॉटस की, वेल्स की अथवा कॉर्नवॉल की संस्कृति को समाप्त किया था, या जैसे फ्रांस राज्य ने विभिन्न क्षेत्रीय संस्कृतियों को नष्ट करके उन सभी को फ्रांसीसी बना दिया था। लेकिन इस प्रक्रिया को बहुत पहले शुरू हो जाना चाहिए था, क्षेत्रीय राष्ट्रवाद का विकास होने से भी पहले। जैसे रूसी साम्राज्य में यूक्रेन, लिथेवेनिया, एसतोनिया, लातविया अथवा तातारस्तान या ऑस्ट्रो-हंगरी साम्राज्य में चेक, हंगरी, क्रोएशियाई अथवा सर्ब जैसे क्षेत्रीय राष्ट्रवादों के विकसित होने से पहले। इन दोनों में से कोई भी एक अकेला राष्ट्र नहीं बन सका, क्योंकि दोनों के भीतर प्रतिस्पर्धी राष्ट्रवाद विकसित हो रहे थे और बिखरना दोनों ही साम्राज्यों की नियति रही। एक महत्वपूर्ण हद तक, यह समय का सवाल था। फिर भी, ऐसा कोई भी राज्य जो एक आधुनिक राज्य के रूप में अस्तित्व में रहने का आकांक्षी था, या ऐसा कोई भी गुट जो एक आधुनिक स्वतंत्र राज्य बनने की इच्छा रखता था (जैसे, उपर्युक्त ऑस्ट्रो - हंगरी साम्राज्यों की विभिन्न राष्ट्रीयताओं में से कोई), उसने अपने आपको राष्ट्रवाद तथा राष्ट्र निर्माण की राजनीति में ही लिप्त पाया।

इस प्रकार, यूरोप ऐसे राष्ट्र राज्यों का जमावड़ा बन गया जो अपने भूभागों के अंदर प्रभुता संपन्न, सिद्धांत में एक-दूसरे के प्रति समान तथा एक दूसरे के साथ एक ऐसी व्यवस्था में संबद्ध थे जो अपने आप में अंतर्राष्ट्रीय संबंध नाम की एक स्वतंत्र विशेषज्ञता बन गई। इसलिए यूरोप में आधुनिक राजनीति का अर्थ अंतर्राष्ट्रीय

संबंधों के एक विचित्र ढांचे से लिया जाने लगा, जो उसके बाद से एक सार्वभौम आदर्श के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। तार्किक तौर पर यह वैध बल प्रयोग के एकाधिकार के राज्य के दावे के अनुरूप भी था, जैसे इसे अपने अधिकार वाले भूभाग के अंदर किसी अन्य सत्ता स्रोत का होना स्वीकार्य नहीं था, ठीक उसी प्रकार इसे उसी भूभाग के अंदर किसी बाहरी सत्ता स्रोत का होना भी स्वीकार्य नहीं था। इस प्रकार, एक ऐसे तंत्र का विकास हुआ जिसमें वे राज्य थे जो भौतिक संसाधनों के मामले में समान नहीं होते हुए भी सिद्धांत तथा कानून की दृष्टि से एक दूसरे से स्वतंत्र तथा प्रभुता संपन्न थे। वास्तविक शक्ति तथा संसाधनों की दृष्टि से, इन राज्यों में बड़े छोटे का क्रम था, किंतु सिद्धांत में वे एक दूसरे के समान हैसियत रखते थे। इसके परिणामस्वरूप राज्यों के बीच स्थायी राजदूतों के आदान-प्रदान तथा व्यापक कूटनीति की स्थिति बनी। इस प्रकार की कूटनीति के माध्यम से, प्रत्येक राज्य अब अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के रंगमंच पर एक अभिनेता था जिसकी भूमिका थी उसके कथित "राष्ट्रीय हित" की रक्षा करना तथा उसे बढ़ावा देना, क्योंकि अब वह राष्ट्र के नाम पर बोलता था। इस तरह, राजनीति में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में लिप्त होना तथा "राष्ट्रीय हित" की रक्षा करना शामिल हो गया। प्रत्येक राजनीतिक दल तथा विचारधारा का यह दायित्व हो गया कि वह "राष्ट्रीय हित" का ध्यान रखे और जो राजनीतिक दल तथा विचारधाराएं समुचित रूप में ऐसा करती दिखाई नहीं पड़ी, वे सत्ता के संघर्ष में अत्यंत कमज़ोर पड़ गई। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का ऐसा तंत्र सोलहवीं शताब्दी से ही आकार ले रहा था। 1648 में हुई वेस्टफेलया की शांति (संधि) के साथ इसे प्रभुसत्ता संपन्न तथा समान राज्यों के बीच संबंधों के एक तंत्र की परिभाषा दी गई, किंतु आधुनिक राजनीति का अंग यह उन्नीसवीं शताब्दी में ही जाकर बना।

बोध प्रश्न 1

1) नौकरशाही की प्रमुख विशेषताएं क्या है? पांच वाक्यों में समझाइए।

....
....
....
....
....
....

2) आधुनिक राज्य ने राष्ट्रवाद को बढ़ावा देने के लिए शिक्षा का किस प्रकार इस्तेमाल किया? 50 शब्दों में लिखिए।

....
....
....
....
....
....

3) अंतर्राष्ट्रीय संबंध क्या हैं? पांच वाक्यों में उत्तर दीजिए।

....
....
....
....
....
....
....

1.4 लोकतांत्रिक राज्यतंत्र

यह विरोधाभास ही है कि एक ओर तो आधुनिक राज्य ने इतनी अधिक शक्तियां अपने हाथों में केंद्रित कर लीं और दूसरी ओर राष्ट्र की राजनीति "लोकतांत्रिक" हो गई । एक अर्थ में विरोधाभास नहीं भी होना चाहिए क्योंकि राज्य का दावा यह था कि वह "लोक की इच्छा" का प्रतिनिधित्व करता है और उसका आधार "लोक (जनता) की प्रभुसत्ता" है। सिद्धांत रूप में, लोग अब प्रभुसत्ता संपन्न ही थे, जैसा कि चुनाव व्यवस्था में परिलक्षित होता है। इसलिए इतनी अधिक शक्तियों का इस्तेमाल करने वाला यह लोकतांत्रिक अथवा जनता का राज्य ही था।

अठारहवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में अमरीका, ब्रिटेन तथा फ्रांस में होने वाले क्रांतिकारी घटनाक्रमों से आधुनिक राज्य का उदय हुआ और यह राज्य जनता के प्रतिनिधित्व के दावे पर आधारित था। सवाल यह नहीं है कि इसने वास्तव में लोक इच्छा का प्रतिनिधित्व किया या नहीं और किया तो उसमें कितनी ईमानदारी थी। पते की बात तो यह है कि इसे ऐसा करने का दावा करना पड़ा और ऐसा करते हुए दिखाई भी देना पड़ा। सभी यूरोपीय राज्यों ने अधिकाधिक मात्रा में ऐसा किया है, फिर चाहे उनकी विचारधाराएं भले ही एक दूसरे की कितनी भी विरोधी क्यों न रही हों। यह बात उत्तर-पश्चिमी यूरोप के उदारवादी लोकतांत्रिक राज्यों पर भी उतनी ही लागू होती है, जितनी उन फासीवादी किस्म के राज्यों पर जो यूरोप का इतना अधिक भाग घेरे हुए थे, विशेषकर बीसवीं शताब्दी के मध्य यूरोप पर और पूर्वी यूरोप तथा सोवियत संघ के समाजवादी राज्यों पर भी।

लोकतांत्रिक राजनीति का अर्थ इसके सिवाय कुछ और ही था कि जनता ही शासक होती है। जनता के लोग कभी असली शासक नहीं हो सकते। वे प्रत्यक्ष तौर पर तभी शासन कर सकते थे जब वे संख्या में इतने कम होते, अधिक से अधिक कुछ सौ, क्योंकि तभी लोग नियमित रूप से मिल-बैठ सकते थे, निर्णय कर सकते थे, और सार्वजनिक पदों पर आसीन हो सकते थे। किंतु आधुनिक राष्ट्रों में कम से कम भी लाखों लोग होते हैं, इसलिए लोकतंत्र की ऐसी धारणाएं अवास्तविक हैं। इसका समाधान अठारहवीं शताब्दी से यूरोप तथा अमेरिका में ढूंढ लिया गया है जहां लोग अपने प्रतिनिधि चुनते हैं, ये प्रतिनिधि फिर अपने शासकों को चुनते हैं। आधुनिक लोकतांत्रिक गठन का यह आदर्श रूप है। जनता ने अपने अधिकार उन प्रतिनिधियों को दे दिए जिन्होंने अपने निर्णय के अनुसार कार्य किया और इन प्रतिनिधियों ने अपने अधिकार सरकार को दे दिए, जिसने खुद अपने विवेक पर कार्य किया। जनता के हाथों में कोई प्रभावी नियंत्रण था तो बस यही कि सरकार और प्रतिनिधियों दोनों को ही एक निश्चित अवधि में चुनाव का सामना करना पड़ता था, जब उन्हें हटा कर दूसरों को लाया जा सकता था। ये 'दूसरे' प्रतिनिधि दूसरे दलों तथा विचारधाराओं के होते थे। इस प्रकार, विविध विचारधाराएं तथा दल एक निश्चित अवधि में शासक बदलने की लोकतांत्रिक राजनीति का एक आवश्यक अंग थे। इस विविधता को हम बहुलवाद (प्लूरलिज्म) के रूप में जानते हैं। वैसे, चुनावों के बीच की अवधि में प्रतिनिधित्व तथा शासन दोनों के ही कार्यों में जनता की कोई भूमिका नहीं होती थी। किंतु सभी को यह अच्छी तरह से पता होने के कारण कि चुनाव आने वाले हैं, ऐसे लोकतांत्रिक शासक तथा प्रतिनिधि नियमित रूप से जनता के मूड को टटोलते रहते थे, यह सुनिश्चित करते रहते थे कि उनके कार्य जनप्रिय थे और अपने व्यवहार को लोक इच्छा के अनुसार बता कर उसे उचित ठहराते थे। इसीलिए चुनावों को तथा चुनावों से जुड़े तमाम अधिकारों तथा प्रक्रियाओं को असाधारण महत्व दिया गया। जैसे सभी को वोट का अधिकार, गुप्त मतदान तथा निष्पक्ष चुनावी प्रक्रिया आदि और इन सब के साथ ही यह धारणा भी बनी कि नियमित चुनाव करने मात्र से लोकतांत्रिक राजनीति सुनिश्चित हो जाती है। ऊपर हमने जिस नमूने का वर्णन किया है वह उदारवादी लोकतांत्रिक राजनीति का आदर्श रूप है जिसे वाम ओर के समाजवादियों ने तथा दक्षिण ओर के अनुदारवादियों ने स्वीकार किया किंतु वाम ओर के क्रांतिकारियों (साम्यवादी, अराजकतावादी आदि) ने तथा दक्षिण ओर के प्रति क्रांतिकारियों (फासीवादी, राष्ट्रीय-समाजवादी आदि) ने अस्वीकार कर दिया।

क्रांतिकारियों तथा प्रति-क्रांतिकारियों ने लोकतांत्रिक राजनीति के एक और ही तर्क का सहारा लिया। उदावादी लोकतांत्रिक राजनीति की तरह उन्होंने भी जनता के समर्थन और पसंद को अपनी शक्ति और वैधता का स्रोत बनाया। इसलिए हमेशा की तरह ही इसका प्रदर्शन चुनावों तथा वोटों के माध्यम से हुआ। चुनावों का आयोजन

कई अलग अलग तरीकों से करने की गुंजाइश थी। बल प्रयोग भी हो सकता था, मतदाताओं को मतदान से बाहर रखा जा सकता था अथवा उनके मतपत्रों पर दूसरे लोगों से मुहर लगवाई जा सकती थी और सब से बड़ी बात तो यह कि कई-कई प्रत्यक्षियों को चुनाव में खड़ा होने से रोका जा सकता था जिससे कि मतदाता केवल एक ही प्रत्याक्षी को मतदान कर सकें। इस प्रकार के शासनों को जनता का ठीक-ठीक कितना समर्थन प्राप्त था यह स्वतंत्र पड़ताल का विषय है और यह मानकर भी नहीं चलना चाहिए कि चाहे वह स्टालिन रहा हो या हिटलर, उन्हें किन्हीं विशेष क्षणों में जनता का पर्याप्त समर्थन प्राप्त नहीं था। किंतु महत्वपूर्ण बात फिर भी यही रह जाती है कि उन्होंने चुनाव की समस्त प्रक्रियाओं के माध्यम से ही इस प्रकार की लोकप्रियता के प्रदर्शन की चेष्टा की।

इस तरह, तानाशाही को सर्वथा लोकतांत्रिक माध्यमों से भी थोपने का रास्ता बना लिया गया। राजनीति की इस कला का इस्तेमाल सबसे पहले लूई नेपोलियन ने फ्रांस में 1851 में किया जब उसने चुनाव के लिए जनमत संग्रह का सहारा लिया, बाद में उसने अपने आप को सम्राट घोषित कर दिया और बुनियादी तौर पर इस लोकतांत्रिक आधार पर फरमान जारी करवा कर शासन किया। अनेक तानाशाहों ने अपने लोकतांत्रिक होने का प्रमाण प्रस्तुत करने हेतु जनमत संग्रह तथा जनादेश का सहारा लिया है, जो जनता के मत का ही दूसरा रूप हैं। इनमें सबसे अधिक कुख्यात उदाहरण हिटलर का है जो 1932 के आम चुनाव जीत कर जर्मनी का चांसलर बना था और उसने 1933 के समर्थकारी अधिनियम (इनेबलिंग एक्ट) के माध्यम से राइखस्टैग (जर्मन संसद) से तानाशाही अधिकार प्राप्त कर लिए थे। सोवियत संघ का बोल्शेविक शासन भी लोकतांत्रिक संस्थाओं की एक सोपानिकी पर निर्भर रहा और इन सोवियतों (परिषदों) का चुनाव जनता ही करती थी। भले ही चुनाव में मात्र एक प्रत्याक्षी को खड़ा होने दिया जाता हो, शासन इस प्रकार के चुनाव नियमित रूप से करवाता था। इसके बिना शासन अपने आपको वैध नहीं महसूस करता था। वास्तव में, 1936-1938 के स्टालिन के सबसे खराब दौर में चुनावों का एक भयंकर दौर देखने में आया जिनके माध्यम से "जनता के शत्रुओं" की पहचान करके उनकी निंदा की गई।

जनता के बीच मान्य होने को प्रमाणित करने की यह समूची प्रक्रिया लोकतांत्रिक वैधीकरण कहलाती है और इसे प्राप्त करने का सर्वाधिक प्रभावी साधन किसी न किसी प्रकार की चुनावी प्रक्रिया में ही देखा गया। जो लोग सम्राटों के वंश में पैदा होने के कारण सम्राट बने उनका अधिकाधिक स्थान सत्ता के वास्तविक केंद्र के रूप में चुने हुए शासकों ने अथवा कभी कभी चुने हुए सम्राटों ने भी ले लिया (जैसे फ्रांस का नेपोलियन तृतीय) किंतु जैसे हम ऊपर बता चुके हैं, ऐसी स्थिति में भी सत्ता राज्य के हाथों में ही केंद्रित रही, अर्थात प्रत्यक्ष शासन तथा वैध बल प्रयोग पर एकाधिकार का दावा राज्य का ही विशेषाधिकार रहा। इस तरह, राज्य के आधार तो अधिक लोकतांत्रिक हो गए, किंतु इसके निरंकुश शासन के अधिकार नौकरशाहीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से और बढ़ गए। फिर (जन्मजात सम्राट के मामले में) परंपरा, (करिश्माई नेता के मामले में) व्यक्तित्व का प्रभाव अथवा (सैनिक तानाशाह के मामले में) शारीरिक बल जैसे किसी भी अन्य स्रोत की तुलना में जनता का समर्थन किसी भी शासक को हमेशा कहीं अधिक शक्ति प्रदान करता रहा है। जनता के हितों को बढ़ावा देने के कारण सत्ता के इस्तेमाल का दावा क्योंकि राज्य के पास था, इसलिए वह इस प्रकार का समर्थन देने के लिए जनता को लामबंद कर सकता था। फ्रांसीसी क्रांति के बाद जल्दी ही राजनीतिज्ञों को यह पता चल गया कि वे ईश्वर, रीति, किसी व्यक्ति, यहां तक कि सेना को लामबंद करके भी उतनी सत्ता अर्जित और इस्तेमाल नहीं कर सकते थे जितनी जनता को लामबंद करके।

फिर भी, शासन के सभी अंगों ने चुनावों जैसी किसी लोकतांत्रिक प्रक्रिया को अपनाने का कार्य नहीं किया। सशस्त्र बलों, अर्धसैनिक बलों तथा पुलिस के साथ साथ नौकरशाही ने भी स्पष्ट रूप में लोकतांत्रिक होने का कोई अधिक दिखावा नहीं किया, फिर भी ये सब मिल कर आधुनिक लोकतांत्रिक राज्य के सर्वशक्तिशाली साधन रहे। समान रूप में, न्यायपालिका तथा समूचा कानूनी तंत्र भी इसी प्रकार का एक और प्रमुख साधन रहा। यह विडंबना ही है कि पहले भी और आज भी इसे आम तौर पर लोकतंत्र के लिए अनिवार्य माना गया है, हालांकि इसकी पूरी तौर पर नियुक्ति ही की जाती है और यह किसी भी अर्थ में जनता के प्रति जवाबदेह नहीं होता। न्यायपालिका के दो महत्वपूर्ण कार्य थे : यह कानून को लागू करके विवादों का निर्णय करती थी और कानून को लागू करते समय वह इसकी विवेचना भी करती थी, अर्थात् वह यह बताती थी कि वास्तविक कानून क्या है। इसलिए, न्यायपालिका केवल विवादों का निपटारा ही नहीं करती थी, अपितु वास्तव में कानून की विवेचना

करके कानून बनाती भी थी, अथवा यह भी बताती थी कि किसी कानून का वास्तविक अर्थ क्या है। विवादों को निपटाने की प्रक्रिया में, वह केवल व्यक्तियों के बीच ही नहीं, अपितु व्यक्तियों तथा राज्य के बीच भी मामलों को सुलटाती थी। राज्य भले ही जनता का प्रतिनिधि होने का दावा करे, न्यायाधीश तो राज्य के विरूद्ध व्यक्तियों के पक्ष में निर्णय कर सकते थे। यह एक कारण है कि चुने हुए नेताओं ने भी कभी कभी प्रतिक्रियावादी बता कर न्यायपालिका की निंदा की है, क्योंकि उसने लोकतांत्रिक ढंग से चुने गए नेताओं की इच्छा का विरोध किया था। किंतु ऐसा करते हुए न्यायपालिका शायद नौकरशाही के उत्पीड़न से व्यक्तियों की रक्षा कर रही होती थी। यह पहला कारण है कि एक स्वतंत्र न्यायपालिका को लोकतंत्र के लिए आवश्यक माना जाता है, हालांकि न्यायपालिका का न तो चुनाव होता है और न ही यह किसी के प्रति जवाबदेह होती है।

इस प्रकार की न्यायपालिका को लोकतंत्र के लिए अनिवार्य क्यों समझा जाता है, इसका अगला कारण है न्यायिक समीक्षा की शक्ति। इसका अर्थ यह होता है कि देश की सर्वोच्च अदालत, जिसे सामान्यतया सर्वोच्च न्यायालय कहा जाता है, वह किसी भी विधान की जांच-परख करके यह तय कर सकती है कि उससे संविधान का उल्लंघन होता है या नहीं। इस प्रकार, यदि जनता के प्रतिनिधि कोई कानून बनाते हैं तो इस प्रकार के सर्वोच्च न्यायालयों के न्यायाधीश उस कानून को रद्द भी कर सकते हैं। इस प्रकार की स्वतंत्र न्यायपालिका के अधिकार अत्यधिक होते हैं। और उनके कुछ अधिकार तो विधायिका से भी बड़े होते हैं। इस प्रकार के असाधारण अधिकारों को यह मान कर स्वीकार कर लिया जाता है कि राजनीतिक व्यवस्था का लोकतांत्रिक सार लिखित संविधान में निहित होता है और यह भी कि केवल विधि विशेषज्ञ ही यह निर्णय करने में समर्थ होते हैं कि नए कानून संविधान के अनुरूप हैं या नहीं। न्यायिक समीक्षा की सर्वाधिक प्रसिद्ध तथा विस्तृत शक्ति अमरीका में स्थापित हुई है। यूरोप के विभिन्न देशों में विभिन्न रीतियां प्रचलन में हैं। किंतु समान रूप से प्रसिद्ध ब्रिटिश व्यवस्था में न्यायिक समीक्षा का प्रावधान नहीं है, हालांकि पहले के कानूनों की विवेचना के माध्यम से न्यायाधीश का बनाया गया कानून सामान्य बात होती है। फिर भी, एक स्वतंत्र न्यायपालिका के हाथों लोकतंत्र की शक्ति का सीमित किया जाना एक ऐसा सच है जो समस्त बहुलवादी उदारवादी लोकतंत्रों पर लागू होता है और इन सीमाओं को उस सिद्धांत के माध्यम से लोकतांत्रिक सिद्धांत का एक अंग बना दिया गया है। जिसे हम शक्तियों के अलगाव अथवा न्यायपालिका, कार्यपालिका तथा विधायिका के अलगाव का सिद्धांत कहते हैं। तो अंततोगत्वा, जनता के प्रतिनिधियों के निर्णयों को अविश्वसनीय माना जाता है, लोकतांत्रिक प्रक्रिया तो लोकतंत्र की रक्षा के लिए अपर्याप्त होती है और वस्तुत: स्वनियुक्ति करने वाले व्यक्तियों के एक छोटे से गुट को लोकतंत्र की रक्षा करने का एक सबसे अच्छा साधन समझा जाता है।

इस प्रकार, हमेशा से आदर्श लोकतंत्र कहलाने वाले देशों में भी आधुनिक लोकतांत्रिक राजनीति अनेक अनिवार्य अर्थों में लोकतांत्रिक नहीं होती। जनता शासन नहीं करती, न्यायिक समीक्षा तथा न्याय करने का काम उस व्यक्ति समूह के हाथों में हैं जो अपने सिवाय और किसी के भी प्रति जवाबदेह नहीं होते और राज्य अपनी विशाल नौकरशाही तथा सैनिक तंत्र के माध्यम से लगभग असीम तथा लगातार बढ़ते अधिकारों का इस्तेमाल करता है। इस सब में लोकतंत्र का कोई नामो-निशान भी नहीं मिलता, फिर भी चुनावी राजनीति तथा नौकरशाही निरंकुशता के इसी संगम को आधुनिक राजनीति में लोकतंत्र बताया गया है। इसका एक कारण तो हम पहले ही देख चुके हैं कि तानाशाही शासनों में भी इन अधिकारों का प्रयोग जनता के नाम पर होता है और चुनावी शासनों में जनता अपने शासकों का चुनाव एक निश्चित अवधि में करती है। लेकिन इसका एक और कारण है, जो शायद अधिक महत्वपूर्ण है और वह है मानव इतिहास में पहली बार राजनीति में ऊंचे स्तरों पर जनता की भागीदारी। जनता स्वयं शासन नहीं करती, किंतु वह अनेक प्रक्रियाओं के माध्यम से भागीदारी करती है, जिनमें चुनाव सर्वाधिक स्पष्ट होते हैं।

इस प्रकार की भागीदारी लामबंदी के माध्यम से होती है। आधुनिक राजनीति में, अठारहवीं शताब्दी के अंत तथा उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में होने वाले क्रांतिकारी घटनाक्रमों के दौरान राजनीतिक दल (पार्टी) नाम की एक नई संस्था का उदय हुआ। ये दल नौकरशाही के भीतर अथवा दरबार में उपस्थित रहने वाले मात्र गुट नहीं थे। अब वे ऐसे संगठन थे जो विचारधारा से परिभाषित थे। विचारधारा तो किसी वर्ग, समूह, क्षेत्र, धर्म, राष्ट्र आदि के हित का मूर्त रूप हो सकता था किंतु यह आने वाले विश्व की तसवीर थी। इस प्रकार के दल अब अपनी विशेष वैचारिक स्थिति के लिए तथा उसके साथ ही स्वयं अपने लिए भी जनता के बीच लामबंदी की चेष्टा करने लगे। कई-कई राजनीतिक दल सक्रिय रूप से जनता के बीच समर्थन बनाने की चेष्टा करने

लगे तो जनता का एक बड़ा वर्ग राजनीति से अधिकाधिक संलिप्त होने लगा। जनता से कहा जाने लगा कि वह राजनीतिक विकल्पों का चुनाव करे और अपना मत व्यक्त करे, तथा विभिन्न तरीकों से किसी भी विषय पर अपनी स्थिति प्रकट करे। इसका रूप यह हो सकता था कि नागरिकों से वोट देने को कहा जाए, किसी श्रमिक संगठन का सदस्य होने को कहा जाए, किसी याचिका (पिटीशन) पर हस्ताक्षर करने को कहा जाए, प्रदर्शन - जुलूस में भाग लेने को कहा जाए, किसी अखबार का ग्राहक बनने को कहा जाए, किसी सभा में तथा अन्य अनेक ऐसी ही गतिविधियों में शामिल होने को कहा जाए। आज हम इसे बिल्कुल आम बात मानते हैं कि विभिन्न किस्म के इतने सारे लोग हमें प्रति दिन इतने सारे तरीकों से परेशान करें, और यह मांग करें कि हम वैसा ही करें जैसा वे चाहते हैं, किंतु ये सारे उन्नीसवीं शताब्दी की ईजाद है। उससे पहले, जनता को अकेला छोड़ दिया जाता था और उससे कभी कभार ही अतिरिक्त कर देने अथवा युद्ध में भाग लेने की मांग की जाती थी।

इन नए तरीकों से, प्रत्येक हित समूह ने समर्थन जुटा कर राजनीतिक दल बना लिए। ये दल किसी प्रमुख नागरिक दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करते थे। जनता से की जाने वाली इस लगातार मांग ने कि वह राजनीति में भाग ले तथा अपनी स्थिति तय करें, अर्थात जनता को लामबंद करने की प्रक्रिया ने ही राजनीति को लोकतांत्रिक बना दिया। अब इस दावे का भी वास्तव में एक आधार रहा होगा कि शासक वर्ग जनता के नाम पर क्रिया कलाप कर रहा था, अर्थात जनता के पास यह जताने का अवसर था कि वे ऐसे शासकों का समर्थन करते हैं या नहीं। ये राजनीतिक दल ऐसे साधन बन गए जिनके माध्यम से ऐसे शासकों को चुना जाता था और जिनके माध्यम से शासक अपनें आपको वैध ठहराते थे। उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान क्रमिक अंशों में, पहले ब्रिटेन, फ्रांस, तथा अमरीका और फिर शेष यूरोप की राजनीति और उसके बाद शेष विश्व की राजनीति से यही तर्क उजागर होता है। सबसे अधिक यही आधुनिक राजनीति का मर्म है, अर्थात लामबंदी के साधन के रूप में एक गैर सैनिक दल के साथ एक लामबंद जनता। जनता के लोग स्वयं शासन नहीं करते, अपितु उसमें शामिल रहते हैं और चाहे उन्हें यह बात पसंद हो या नहीं उनके लिए इसमें शामिल होना आवश्यक होता है।

उपर्युक्त विवरण से यह प्रतीत होता है कि आधुनिक जनता पर नौकरशाही की निरंकुशता का और पार्टी की लामबंदी का राज है। और वहां किसी व्यक्ति अथवा समूह की स्वतंत्रता अथवा पसंद की कोई वास्तविकता अथवा अर्थ नहीं रह जाता, जबकि लोकतंत्र के यही मुख्य गुण होने चाहिए। तो फिर क्या लोकतांत्रिक राजनीति अत्याचारी शासन का ही व्यापक रूप है? बिल्कुल नहीं, भले ही यह वह नहीं हो जो होने का यह दावा करती है।

अपने शासन के वैध होने का राज्य का दावा और जनता के समर्थन हेतु राजनीतिक दलों की लामबंदी, इन दोनों का ही आधार नागरिकों के अधिकार हैं। 'नागरिकों के अधिकार' जुमले का इस्तेमाल फ्रांसीसी क्रांति के दौरान किया गया था, जबकि बाद में संयुक्त राष्ट्र संघ ने इसे 'मानव अधिकार' का नाम दिया। आधुनिक राजनीतिक चर्चा में अधिकार का अर्थ होता है वह सब जिसके साथ व्यक्ति का जन्म होता है और जिसे उससे छीना नहीं जा सकता, ये मानवाधिकार शासकों की ओर से दिए गए विशेषाधिकार नहीं होते, जैसा कि पूर्व-आधुनिक काल में समझा जाता था। इसलिए नागरिकों की ओर से की गई राजनीतिक गतिविधि उन अधिकारों के इस्तेमाल का रूप ले लेती है जो सभी के लिए सारा समय समान रूप में उपलब्ध रहते हैं। अधिकारों का दावा कोई भी रूप ले सकता है और लेता भी है और जहां राज्य तथा राजनीतिक दल अपर्याप्त पाए गए है, वहां नागरिकों ने अपने आपको नई प्रकार की (राजनीतिक) गतिविधियों में तथा नए संगठनों के माध्यम से लामबंद किया है। इस प्रकार की लामबंदी का सहारा मात्र राज्य की सत्ता हथियाने की आकांक्षा करने वाले राजनीतिक दल ही नहीं लेते, जैसा कि पश्चिमी यूरोप की उदारवादी अथवा बहुलवादी चुनावी व्यवस्थाओं में होता है और न ही केवल एक दल के माध्यम से कार्य करने वाले राज्य ही लेते है, जैसा कि फासीवादी और साम्यवादी (कम्युनिस्ट) राज्यों में होता है।

असंख्य नागरिक कार्रवाई गुट अपना गठन करते हैं और सत्ता पाने के सिवाय अन्य उद्देश्यों के लिए कार्य करते हैं, वे उस प्रकार के मकसदों के लिए कार्य करते हैं जो अधिक सीमित हो सकते हैं, जैसे अन्याय के शिकार किसी व्यक्ति की रक्षा करना, पर्यावरण की सुरक्षा करना, उपभोक्ताओं के अधिकारों का समर्थन करना आदि। इसके अतिरिक्त ये मात्र दबाव गुटों के रूप में किसी हित की रक्षा के कार्य में भी लग सकते हैं। ये हित व्यापारिक भी हो सकते हैं अथवा व्यावसायिक भी और इसका सर्वाधिक स्पष्ट उदाहरण है श्रमिक संगठनों की सक्रियता। व्यक्तियों की ओर से राजनीतिक कार्रवाई का एक रूप यह भी हो सकता है कि वे जनहित के मामलों पर टिप्पणी

करें और इस प्रकार के तमाम व्यक्तियों को एक साथ रखें तो वह जनमत बन जाता है। इसलिए जनता अपने अधिकारों के इस्तेमाल की दिशा में सक्रिय होती है, वह केवल राजनीतिक तंत्र के तमाशों में अपना समर्थन जताने वाली मूक भीड़ नहीं होती, हालांकि अक्सर ऐसा ही होता है। सक्रिय नागरिक के बिना आधुनिक राजनीति का अस्तित्व नहीं है। इसके अतिरिक्त, ऊपर नौकरशाही तथा लामबंदी और नीचे सक्रिय नागरिक के बीच एक लगातार बना रहने वाला तनाव आधुनिक राजनीति को परिभाषित करता है, चाहे उसे हम लोकतांत्रिक कहें अथवा अधिनायकवादी, किंतु लोकतांत्रिक वैधता तथा प्रक्रिया का उसका दावा हमेशा बना रहता है।

आधुनिक राजनीति की एक और महत्वपूर्ण विशेषता दिखाई देती है जिसका उद्भव अठारहवीं शताब्दी के अंत तथा उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ की इस अर्ध शताब्दी में हुआ है। यह एक विचित्र प्रारूप है जिसे हम आम मान बैठे हैं, किंतु यह भी उस समय अत्यधिक नया था। इसमें वाम, मध्य, तथा दक्षिण पंथी राजनीतिक विचारधाराएं और राजनीतिक दल आते हैं जो वाम से दक्षिण तक के पंथ में किसी निश्चित दृष्टिकोण से प्रतिबद्ध होते हैं। वाम पंथ में वे सभी विचारधाराएं आ जाती हैं जिनमें परिवर्तन, निरंतर प्रवर्तन तथा अतीत एवं परंपरा से भविष्य की ओर जाने का आग्रह रहता है। वाम पंथ का आग्रह यह था कि परिवर्तन की प्रक्रिया में प्रवर्तन अथवा अतीत एवं परंपरा का पूरी तरह रूपांतरण शामिल हो। इसलिए क्रांति का संबंध वामपंथी विचारधाराओं से होता है, इनमें से समाजवाद तथा साम्यवाद सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। दूसरी ओर मध्य मार्ग परिवर्तन की प्रक्रिया को तो स्वीकार करता है किंतु उसकी चेष्टा यही रहती है कि प्रवर्तन की गति को धीमा ही रखा जाए। मध्य मार्ग अतिवाद से डरता है और क्रांतिकारी नहीं होना चाहता। उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान, उदारवादी आंदोलन तथा विचारधाराएं व्यापक अर्थ में राजनीतिक वर्णक्रम के मध्य में स्थित मानी जाती थी। क्योंकि समाजवादी वाम की ओर झुके हुए थे। किंतु समाजवाद से पहले के दिनों अर्थात 1830 के दशक में उदारवादी भी उसी तर्क के आधार पर क्रांतिकारी अथवा वामपंथी हो सकते थे जिस तर्क से समाजवादी थे। विचारधारा की दृष्टि से फ्रांसीसी क्रांति के आदोलन भी उदारवादी थे। समाजवादी नहीं, किंतु फिर भी वे क्रांतिकारी थे क्योंकि उनका उद्देश्य परंपरा को उखाड़ फेंकना ही था। दक्षिण पंथी विचारधाराओं का उद्देश्य क्रांति को लगाम देना और जो कुछ अस्तित्व में आ चुका है उसे मज़बूत करना था। उनकी चेष्टा यह रहती थी कि परंपरा का इस्तेमाल किया जाए, उसमें सुधार किया जाए, उसे एक एक कर बदला जाए, किंतु उसे उखाड़ कर फेंका नहीं जाए, जैसा कि वामपंथ करना चाहता था और अधिकांश मध्य मार्ग भी करने को तैयार रहता था। दक्षिण पंथ में अनुदारवादी आते थे, जैसे यूरोप में क्रिश्चियन लोकतंत्र और ब्रिटेन में टोरी अथवा अनुदारपंथ। किंतु अनुदारपंथ कोई निर्धारित दृष्टिकोण नहीं था क्योंकि यह अपने आपको मध्य मार्ग तथा वामपंथ के सापेक्ष परिभाषित करता था, उसने 1815 तक तो फ्रांसीसी क्रांति के लाए परिवर्तनों को स्वीकार किया किंतु उससे अधिक की उसने चाह नहीं की, 1848 की क्रांतियों के बाद, उसने उन परिवर्तनों को भी स्वीकार किया किंतु यह भी आशा बांधी रखी कि आगे किसी भी क्रांति को रोका जाएगा। इस प्रकार उसने प्रवर्तनों तथा क्रांतियों की नवीनतम श्रृंखला से तो अपने आपको संबद्ध किया और उसके बाद यथास्थिति को बनाए रखने की चेष्टा की। यह एक मनोवृति थी जिसका सटीक राजनीतिक दृष्टिकोण दशक प्रति दशक बदलता रहा क्योंकि उसकी दिशा अतीत के उत्कृष्ट भाग को बनाए रखने की ओर थी जबकि अतीत निरंतर लुप्त हो रहा था। जैसा कि एक प्रसिद्ध दार्शनिक ने कहा है, अनुदारपंथ उस अतीत को विकसित करने की चेष्टा करता है जो वर्तमान में रह जाता है, समाजवाद उस भविष्य को विकसित करने की चेष्टा करता है जो वर्तमान में अंतर्निहित होता है और मध्यमार्ग वर्तमान का ही यशगान करने की चेष्टा करता है।

वैसे, दक्षिणपंथ अक्सर ही एक अतिवादी दृष्टिकोण की ओर झुका है जिसे प्रति क्रांति कहते हैं। क्रांति के विचार के प्रति घृणा के भाव में अथवा सब कुछ को एक नए रूप में ढालने के विचार के प्रति घृणा भाव में, दक्षिणपंथ के एक भाग की यह इच्छा रही कि क्रांति के मूल विचार को ही रद्द कर दिया जाए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए दक्षिण पंथ वापस अतीत की ओर नहीं मुड़ा, अपितु उसने आधुनिक काल की क्रांतियों की रची हरेक चीज़ पर प्रहार किया। यह प्रति क्रांति थी, जो अनुदारपंथ समेत आधुनिक क्रांतियों के स्वप्न के प्रति इतने भीषण रूप में विरोधी था कि इसने स्वाभाविक रूप में अपने आपको अपनी नकारात्मकता में ही नष्ट कर लिया। बीसवीं शताब्दी में इसका सर्वोत्तम प्रतीक फासीवाद तथा राष्ट्रीय समाजवाद थे, किंतु दोनों ही इससे पहले भी महत्वपूर्ण रूप में विद्यमान थे। इस तिहरे वैचारिक विभाजन को हमारे समय के एक प्रसिद्ध दार्शनिक ने यूरोप का वैचारिक गृह युद्ध बताया है, यह भी कि उन्नीसवीं शताब्दी का यूरोपीय गृह युद्ध वामपंथ की ओर सोवियत संघ के नेतृत्व में साम्यवाद, मध्य में मित्र राष्ट्रों के नेतृत्व में उदारवाद तथा दक्षिणपंथ की ओर धुरी (संधि) देशों के नेतृत्व

में प्रति क्रांति के बीच लड़ा गया, 1945 के बाद, यह उसी वामपंथ तथा मध्य मार्ग के बीच शीत युद्ध में बदल गया और 1991 में सोवियत संघ तथा साम्यवादी यूटोपियाई स्वप्न के बिखर जाने के बाद कथित उत्तर-आधुनिक काल में मध्य मार्ग का नियंत्रण बना रह गया है।

बोध प्रश्न 2

1) लोकतांत्रिक राज्यतंत्र स आप क्या समझते हैं? 50 शब्दों में लिखिए।

....

....

....

....

....

2) न्यायपालिका के महत्व पर दस वाक्य लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) लोकतंत्र में राजनीतिक दलों की भूमिका को दस वाक्यों में समझाइए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

1.5 सारांश

इस इकाई में हमने पढ़ा कि आधुनिक राज्य किन अर्थों में पूर्व-आधुनिक राज्य से भिन्न है, कैसे यह व्यापक, केंद्रीभूत तथा नौकरशाही शक्ति का इस्तेमाल करता है और कैसे यह जनता की संप्रभुता के सिद्धांत के माध्यम से अपने शासन को वैध ठहराता है। इस प्रकार यह राज्य के लिए समर्थन जुटाता है और इसके लिए विशेषकर राष्ट्रवाद का सहारा लेता है जो कि एक राजनीतिक भूभाग पर एकरूपी संस्कृति को थोपने का ही एक रूप है। समर्थन जुटाने के लिए यह आधुनिक राजनीतिक दल का सहारा लेता है, जो उन्नीसवीं शताब्दी की ईजाद है

और आधुनिक राजनीति को बहुलवादी कहलाने वाली बहुदलीय व्यवस्था तथा अक्सर तानाशाही कही जाने वाली एक दलीय व्यवस्था दोनों के माध्यम से संचालित किया जा सकता है। किंतु आधुनिक राजनीति में नागरिक उन अधिकारों के इस्तेमाल के सहारे काम करते हैं जो उनके पास जन्म से ही होते हैं और जिन्हें बाद में उनसे छीना नहीं जा सकता, इस प्रकार वे राज्य से स्वतंत्र रहते हुए तमाम प्रकार के गुटों में अपने आपको संगठित कर लेते हैं। इस स्थिति को अक्सर लोकतांत्रिक कहा जाता है, किंतु यह एहसास अपने आपमें कहीं अधिक महत्वपूर्ण है कि आधुनिक नागरिक पहले की अपेक्षा राजनीतिक दृष्टि से सक्रिय होने में अधिक समर्थ हैं, चाहे राज्य लोकतांत्रिक हो अथवा नहीं, और यह अभूतपूर्व स्तर पर उन्हें सक्रिय रूप में लामबंद करने की राज्य की सामर्थ्य का पूरक है। ये दो प्रवृत्तियां मिल कर आधुनिक राजनीति को जन्म देती हैं, सक्रिय नागरिक तथा लामबंद करने वाला नौकरशाही राज्य।

1.6 शब्दावली

पूर्ण सत्ता/ निरंकुश शक्ति : राज्य पर शासन करने हेतु असीमित अधिकार का सिद्धांत।

अनुदारपंथ : किसी भी प्रकार के परिवर्तन का विरोध करने की प्रवृत्ति।

प्रति-क्रांति : वह क्रांति जो पहले की किसी क्रांति से स्थापित राजनीतिक शासन को बदल देती है।

फासीवाद : दक्षिण पंथी तानाशाही शासन की विचारधारा। फासीवादी विचारों का उद्भव बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में इटली में हुआ।

सामंतवाद : मध्ययुगीन यूरोप में विकसित विचार, जिनके अनुसार लोग उस सामंत से बंधे थे जिसका अपने अधीन काम करने वाले लोगों पर पूरा अधिकार था।

उदारवाद : किसी पूर्वाग्रह से मुक्त होकर नरमपंथी राजनीतिक तथा सामाजिक सुधार में विश्वास करना।

बहुलवाद : अलग-अलग राजनीतिक तथा धार्मिक मान्यताओं वाले अलग-अलग गुटों का एक ही समाज में रहना।

समाजवाद : निजी स्वामित्व का उन्मूलन तथा राज्य के स्वामित्व एवं सबकी समानता का सिद्धांत।

संप्रभुता : बिना किसी बाहरी नियंत्रण के राष्ट्र, राज्य अथवा शासक के पास शक्ति/सत्ता का होना।

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 1.2।
2) राज्य के नियंत्रण में, शिक्षा राज्य के वांछित उद्देश्यों को बढ़ावा देने का एक महत्वपूर्ण साधन है। भाग 1.3 को पढ़िए, उसमें आपको उत्तर मिल जाएगा, फिर उसे आप अपने शब्दों में लिखिए।

3) विभिन्न राज्यों के बीच विकसित कूटनीतिक संबंध। पढ़िए भाग 1.3।

बोध प्रश्न 2

1) जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों से संचालित सरकार। देखिए भाग 1.4।
2) देखिए भाग 1.4।
3) स्पष्ट विचारधारा वाला राजनीतिक दल आधुनिक राजनीति की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। पढ़िए भाग 1.4।